6451
Received
4-1-97
आ. श्री कैलाससागर सूरि ज्ञानमंदिर
श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा
गांधीनगर, पिन-382009

तित्थयर

वर्ष २० : अंक ३ जुलाई १९९६

जैन भवन

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष २० : अंक ३

जुलाई १९९६

□

संपादन

राजकुमारी बेगानी

लता बोथरा

□

आजीवन : एक हजार रुपये

वार्षिक शुल्क : पचपन रुपये

प्रस्तुत अंक : पाँच रुपये

□

प्रकाशक

जैन भवन

पी-२५, कलाकार स्ट्रीट,

कलकत्ता-७०००७

□

मुद्रक

अनुप्रिया प्रिन्टर्स

६ ए, बड़ौदा ठाकुर लेन

कलकत्ता-७

सूची

श्रावक जीवन	६९
चैत्रगच्छ का संक्षिप्त इतिहास	८०
सरवालगच्छ का संक्षिप्त इतिहास	८७
महाराजा श्रेणिक	९५
संकलन	९८

जिसने दुःख को समाप्त कर दिया है, उसे मोह नहीं है, जिसने मोह को मिटा दिया है उसे तृष्णा नहीं है। जिसने तृष्णा का नाश कर दिया है उसके पास कुछ भी परिग्रह नहीं है, वह अकिंचन है।

NAHAR

Interior Decorator

5/1, Acharya Jagadish Chandra Bose Road

CALCUTTA-700 020

Phone : 247-6874 Resi. : 244-3810

श्रावक जीवन

—आचार्यश्री विजयभद्र गुप्त सूरीश्वरजी

सद्धर्मश्रवणादेवं नरो विगतकल्मषः ।
ज्ञाततत्त्वो महासत्त्वः परसंवेगमागतः ।।
धर्मोपादेयतां ज्ञात्वा संजातेच्छोऽत्र भावतः ।
दृढं स्वशक्तिमालोच्य ग्रहणे संप्रवर्तते ।।

महान् श्रुतधर परम कृपानिधि आचार्य श्री हरिभद्रसूरीश्वरजी ने स्वरचित 'धर्मबिन्दु' ग्रंथ के तीसरे अध्याय में गृहस्थजीवन का विशेष धर्म बताया है।

सामान्य धर्मों का यथोचित पालन करता हुआ मनुष्य सद्गुरु का जब परिचय पाता है और उनसे सद्धर्म का उपदेश सुनता है तब उसका मिथ्यात्व दूर होता है और क्रोधादि कषायों की तीव्रता घटती है।

मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषाय मनुष्य को तत्त्वबोध प्राप्त नहीं होने देते हैं। सर्वज्ञभाषित तत्त्वों का बोध नहीं होने देते हैं। तत्त्वबोध में अवरोधक हैं ये दो पाप। सद्धर्म का उपदेश, इन पापों को नष्ट कर सकता है। हाँ, कर सकता है, करता ही है—ऐसा नियम नहीं है। ऐसे भी जीव होते हैं दुनिया में कि तीर्थंकर के मुँह से उपदेश सुनते रहते हैं, फिर भी उनका मिथ्यात्व यथावत् बना रहता है और अनन्तानुबन्धी कषाय यथावत् बने रहते हैं।

उपदेश का प्रभाव सापेक्ष होता है। जीवों की योग्यता अपेक्षित रहती है। योग्यता चाहिये सरलता की। यदि मनुष्य में कुटिलता नहीं है, वक्रता नहीं है और उसको सद्गुरू का संयोग मिल जाता है तो उसकी उन्नति होने में देर नहीं लगती है। उस पर धर्मोपदेश का प्रभाव पड़ता ही है। आढ़र श्रेष्ठि और नरवीर, दोनों सरल प्रकृति के जीव थे। उनके हृदय में नहीं था कपट, नहीं था दंभ। वे आचार्य श्री यशोभद्रसूरिजी के पास प्रतिदिन जाते हैं, धर्मोपदेश सुनते हैं और गुरूदेव की पर्युपासना करते हैं। उनका मिथ्यात्व दूर होता है। उनके कषायों की अनन्तानुबन्धिता दूर होती है।

आढ़र और नरवीर ने वास्तविक परमात्मस्वरूप को समझा। सम्यग् गुरूतत्त्व को पहचाना और सद्धर्म का बोध प्राप्त किया। उनकी आत्मा में

तत्त्वबोध का प्रकाश हुआ। आचार्यदेव ने उनको जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, बन्ध, निर्जरा और मोक्ष-तत्त्वों का स्वरूप समझाया। दोनों ने नव तत्वों का ज्ञानप्राप्त किया। उनके हृदय में परमात्मा जिनेश्वरदेव के धर्मशासन पर अनुराग बढ़ता चला।

ज्यों-ज्यों पाप और पुण्य का विवेक विकसित होता गया त्यों-त्यों संसार के भौतिक सुखों की ममता-आसक्ति कम होती चली। हालांकि मोक्ष की स्पष्ट कल्पना आना तो मुमकिन नहीं था, परन्तु फिर भी मोक्ष की बातें उन दोनों को अच्छी लगने लगी। आत्मा के शुद्ध स्वरूप की बातें प्रिय लगने लगी।

उन दोनों को धर्म उपादेय लगने लगा। यानी जीवन में धर्म की आवश्यकता महसूस करने लगे।

सभा में से : क्या नरवीर के जीवन में इतना परिवर्तन सम्भव है? डाकू जीवन का कोई व्यसन उस में नहीं रहा होगा?

महाराजश्री : हाँ, परिवर्तन 'सत्त्व' पर निर्भर होता है। सात्त्विक मनुष्य डाकू से साधु बन सकता है। ऐसे अनेक उदाहरण इतिहास में मिलते हैं। अर्जुनमाली और दृढ़प्रहारी के दृष्टांत शास्त्रों में प्रसिद्ध हैं। वाल्मीकि की कहानी आप लोग जानते हो। वर्तमानकाल में भी मैंने ऐसे व्यक्ति देखे हैं... कि जिन्होंने सभी व्यसनों का एक साथ त्याग कर संयममय जीवन बनाया है। मनुष्य में सात्त्विकता होनी चाहिये। नरवीर सात्त्विक पुरुष था। और, उस को सहयोग आढ़र जैसे शिष्ट पुरुष का मिल गया। आढ़र के घर में कोई व्यसन नहीं था। सभी सच्चरित्री लोग थे। इसलिए नरवीर को वातावरण अच्छा मिल गया। मनुष्य के चरित्रनिर्माण में वातावरण की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यदि अच्छा वातावरण मिलता है तो अच्छे चरित्र का निर्माण होता है, यदि बुरा वातावरण मिलता है तो बुरे चरित्र का निर्माण होता है। यदि स्वयं का और परिवार का अच्छा चरित्र मिर्माण हो तो अच्छे वातावरण में रहो।

नरवीर का भाग्योदय होना था न? आढ़र श्रेष्ठि के परिवार में रहने को मिला और गुरूदेव यशोभद्रसूरिश्वरजी का समागम प्राप्त हुआ। उसका भीतरी व्यक्तित्व उभरने लगा। धर्मतत्त्व का उसे बोध प्राप्त होने लगा। ज्यों-ज्यों वह अहिंसा, सत्य, अचौर्य, सदाचार, अपरिग्रह आदि धर्मतत्त्वों को समझता गया, त्यों-त्यों वे तत्त्व उसके मन को प्रिय लगने लगे—'वास्तव में धर्म ही मित्र है और धर्म ही स्नेही है। मृत्यु के बाद आत्मा के साथ एक मात्र धर्म चलता है, शेष सब कुछ शरीर के साथ नष्ट हो जाता है। इसलिए मुझे धर्म से सम्बन्ध जोड़ना चाहिये। गुरूदेव ने बारह व्रतमय श्रावक धर्म

बताया है...मुझे वह ग्रहण करना चाहिये। परन्तु क्या मैं उस श्रावकधर्म का समुचित पालन कर सकूंगा? मुझे आढ़र श्रेष्ठि के साथ परामर्श करना चाहिये। चूंकि वे भी श्रावकधर्म स्वीकार करने की बात करते थे।

जब आढ़र श्रेष्ठि और नरवीर ने गुरुदेव के सामने बारह व्रतमय श्रावक धर्म अंगीकार करने की भावना व्यक्त की, तब गुरुदेव ने कहा—'महानुभावों, तुमने धर्म उपादेयता समझ कर व्रतमय श्रावकधर्म स्वीकार करने की भावना व्यक्त की, इससे मुझे बहुत सन्तोष हुआ है, परन्तु तुम अपनी शक्ति और सामर्थ्य का विचार कर लो। तुम व्रतों का आजीवन पालन कर सकोगे या नहीं? भावोल्लास में व्रत ग्रहण करना सरल होता है परन्तु पालन करना दुष्कर है।'

नरवीर ने पूछा—'ऐसा क्यों होता है गुरुदेव?'

आचार्यदेव ने कहा: 'महानुभाव, मन के भाव स्थिर नहीं होते हैं। अभी तेरा मन व्रतधर्म को स्वीकार करने के लिये उल्लसित है। परन्तु यह उल्लास जीवनपर्यन्त नहीं टिक सकता। जब उल्लास चला जायेगा तब व्रत का पालन करना दुष्कर बन जायेगा। कभी व्रत को भंग करने का विचार भी आ सकता है। हाँ, मन का उल्लास चले जाने पर भी यदि मन की दृढ़ता होती है तो प्राण जाने पर भी व्रतभंग नहीं होता है।

इसलिए, तुम दोनों अति सूक्ष्म बुद्धि से सोच लो। अपनी-अपनी मानसिक शक्ति के विषय में सोच लो। सोचे बिना, शक्ति के बिना व्रत ग्रहण करने पर भंग होने की सम्भावना रहती है। इससे बहुत बड़ा अनर्थ होता है। नुकसान होता है। जिस प्रकार व्रतपालन महान् फल देनेवाला होता है वैसे ही व्रत भंग बहुत नुकसान करने वाला होता है।'

आचार्यदेव की बात, दोनों महानुभावों को गम्भीरता से सोचने के लिये बाध्य करती है। यह बात हम लोगों को यानी उपदेशकों को भी सोचने के लिये विवश करती है।

सभा में से: आपको क्या सोचने का है?

महाराजश्री: हम लोगों को यह सोचने का है कि व्रत लेने वाला, प्रतिज्ञा...अभिग्रह लेने वाला, व्रत...प्रतिज्ञा...अभिग्रह ग्रहण कर उस का पालन कर सकेगा या नहीं? व्रत लेने की इच्छा वालों को सोचने के लिये, विचार करने के लिये प्रेरित करना चाहिये कि 'तुम सोच लो गम्भीरता से, कि तुम व्रतों का पालन कर सकोगे या नहीं।' कोई-कोई धर्म गुरु तो व्रत ग्रहण करने वालों की योग्यता-अयोग्यता सोचते ही नहीं! उन की भावना है या नहीं व्रत लेने की, यह भी नहीं सोचते...और व्रत दे देते हैं। नियम...प्रतिज्ञा दे देते

हैं। और ऐसे कई लोगों को व्रत भंग करते हुए मैंने देखा है। पूछने पर उन्होंने कहा—'क्या करें महाराज साहब, उन महाराज साहब ने मेरे पर बहुत दबाव डाला 'यह प्रतिज्ञा तो तुझे लेनी ही पड़ेगी...' 'तू यह प्रतिज्ञा नहीं लेगा तो मैं तेरे घर से भिक्षा नहीं लूंगा...।' वगैरह कह कर मुझे जबरन प्रतिज्ञा दे दी। मैं उस प्रतिज्ञा का पालन कहीं कर सका, प्रतिज्ञा भंग हो गयी...।' इसमें प्रतिज्ञा लेने वाला जितना दोषित नहीं है उतना प्रतिज्ञा देने वाला दोषित है। व्रत, नियम और प्रतिज्ञा देने का काम गीतार्थ साधुपुरुषों का होता है। व्रत देते समय, व्रत लेने वाले के परिवारिक संयोग, उसका मनोबल, उसका व्यवसाय वगैरह बहुत सी बातें ध्यान में लेने की होती है।

व्रत लेने वालों को बहुत गम्भीरता से सोचने के लिये ग्रन्थकार आचार्यदेव अनुरोध करते हैं। 'दृढं **स्वशक्तिमालोच्य**' कहा है उन्होंने। व्रत लेने वालों को अपनी शक्ति की आलोचना सूक्ष्मता में करनी चाहिए। 'दृढं का अर्थ टीकाकार आचार्यश्री ने "**अतिसूक्ष्माभोगेन**" किया है। स्वशक्ति की आलोचना अति सूक्ष्म आभोग से करने को कहा है। 'आभोग' यानी उपयोग। मन के प्रति अति सूक्ष्म उपयोग से देखना है। अपने मन को ऊपर-ऊपर से नहीं देखना है। मन की गतिविधियाँ अति सूक्ष्मता से देखनी चाहिये। व्रतों का पालन करने की योग्यता अपने मन में है या नहीं उस बात का निर्णय करना चाहिये। यदि व्रतपालन करने की क्षमता-दृढ़ता हो मन में तो ही व्रत ग्रहण करना चाहिये, अन्यथा नहीं। चूंकि स्वशक्ति का आलोचन किये बिना व्रत लेने पर व्रत भंग होने की पूरी सम्भावना रहती है। व्रत भंग से अनर्थ होता है, बहुत बड़ा अहित होता है।

इस दृष्टि से आचार्यदेव ने आढ़र श्रेष्ठि को और नरवीर को व्रतों को स्वीकार करने से पूर्व गम्भीरता से सोचने के लिये कहा था। व्रतों का स्वरूप समझाया, व्रतों का रहस्य समझाया, व्रत ग्रहण करने की विधि भी समझाई...। व्रत स्वीकार करने के भाव भी दोनों के हृदय में पैदा कर दिये, परन्तु ज्यों वे दोनों व्रत ग्रहण करने के लिये तत्पर हुए, कि दोनों को अपनी-अपनी शक्ति का पर्यालोचन करने के लिए प्रेरित किये। 'अपनी शक्ति का विचार कर लो गम्भीरता से—मैं व्रतों का पालन कर सकूंगा क्या ?'

प्रायः ऐसा देखने में आता है कि जो व्रत मनुष्य लेता है, उस व्रत के भंग होने के संयोग कभी न कभी आ जाते हैं! कसौटी का समय आ ही जाता है! उस प्रतिकूल संयोग में व्रतपालन में दृढ़ रहना मुश्किल ही नहीं, अति मुश्किल होता है। इसलिये भविष्य में कैसे-कैसे संयोग आ सकते हैं व्रत भंग के, और उन संयोगों में व्रत पालन की दृढ़ता रहेगी या नहीं—वह सोचने का होता है।

यदि लगे कि 'मैं कैसे भी संयोग में व्रतभंग नहीं होने दूंगा...प्राण जाय तो जाय लेकिन व्रत का भंग नहीं करूंगा...' तो व्रत स्वीकार करना चाहिये। उदाहरण से यह बात स्पष्ट करता हूं।

मान लो कि मेरे उपदेश से आपके मन में भावना पैदा हुई कि 'जमीनकंद नहीं खाना है, जमीनकंद का त्याग करना है।' आप मेरे पास प्रतिज्ञा लेने आये। आपको उस समय सोचना चाहिये—

१. 'कोई शादी-विवाह में जाने पर, वहां आलू...प्याज वगैरह की सब्जी होगी तो सब्जी के बिना भोजन कर सकूंगा ?'

२. 'कभी लम्बी मुसाफरी में जमीनकंद की ही सब्जी मिलेगी, तो सब्जी के बिना मात्र दूध या दही के साथ रोटी-पूड़ी खा कर चला लूंगा न ?'

३. 'कभी होटल में खाने का अवसर आया, और वहां जमीनकंद वाली ही दाल-सब्जी है, तो क्या उसके बिना भोजन कर सकूंगा ?'

४. 'मित्रों के साथ पार्टी में गये, यदि वहां जमीनकंद से बनी हुई वस्तु नहीं खाऊंगा तो दोस्त मेरी मजाक उड़ायेंगे...मुझे खाने के लिए आग्रह करेंगे...उस समय मैं मेरी प्रतिज्ञा में दृढ़ रह सकूंगा क्या ?'

एक दूसरा उदाहरण सुन लो।

आप के मन में रात्रि भोजन का त्याग करने की इच्छा पैदा हुई। आपने प्रतिज्ञा लेने का विचार किया। आपको अति सूक्ष्मता से आपके मनोबल के विषय में सोचना चाहिए कि—

१. कोई शादी-विवाह के प्रसंगों में, कोई पार्टी वगैरह में भोजन का निमन्त्रण आयेगा। भोजन प्रायः रात्रि में होगा, तो मैं स्पष्ट इन्कार कर सकूंगा क्या ? मैं रात्रि भोजन नहीं करता हूं' ऐसी स्पष्ट बात कर सकूंगा क्या ?

२. कभी कार्यवश, सूर्यास्त के पूर्व घर नहीं पहुंच सका, सूर्यास्त हो गया, तो भोजन के बिना रह सकूंगा।

३. मेरे सिवा घर में सभी लोग रात्रि भोजन करते हैं, उनको रोजाना रात्रि भोजन करते देख, मेरे मन में रात्रि भोजन करने की इच्छा पैदा नहीं होगी न ?

४. कभी रात्रि के समय अति क्षुधा लगने पर, रात्रि भोजन करने के लिये तत्पर नहीं बनूंगा न ? व्रत भंग नहीं होगा न ?

५. मेरे रात्रि भोजन नहीं करने पर मेरे स्नेही, मेरे मित्र वगैरह नाराज होंगे, उस समय मैं उनकी नाराजगी सहन करूंगा न ? अथवा उनको खुश करने के लिये प्रतिज्ञा भंग करूंगा ?

इस प्रकार हर प्रतिज्ञा के विषय में सोचना चाहिये। ग्रन्थाकार का कहने का तात्पर्य यह है कि भावोल्लास में बहकर बिना सोचे प्रतिज्ञा नहीं लेनी चाहिये। प्रतिज्ञा लेने से पूर्व शान्त दिमाग से, स्वस्थ मन से सोचना चाहिये। यदि स्वयं मनुष्य गम्भीरता से नहीं सोच सकता है तो अपने बुद्धिमान मित्रों से परामर्श करना चाहिये कि जो मित्र व्रतधारी हों। जो मित्र व्रत—नियमों के प्रति आदरभाव रखने वाले हों। ऐसे मित्र नहीं हों तो व्रत देने वाले ज्ञानी गुरुदेव से परामर्श करना चाहिये।

नरवीर ने आढ़र श्रेष्ठि के साथ परामर्श किया। नरवीर के लिये वे ही श्रद्धेय थे और आधार थे। आढ़र श्रेष्ठि स्वयं भी व्रत ग्रहण करने की भावना वाले थे। अर्थात्‌आढ़र श्रेष्ठि व्रत चाहक थे। इसलिये वे नरवीर को यथोचित मार्गदर्शन दे सकते थे। नरवीर के मनोबल को दृढ़ कर सकते थे।

आढ़र श्रेष्ठि को यह तो मालूम ही था कि नरवीर सत्त्वशील पुरुष है। ग्रहण की हुई प्रतिज्ञा का प्राणान्त तक पालन कर सकता है। धर्म के लिये यह प्राण त्याग कर सकता है, परन्तु प्राणों के लिये धर्म का त्याग नहीं करेगा। उन्होंने नरवीर को कहा : 'नरवीर, तू निर्भय और निश्चित बन कर व्रत ग्रहण करना। तू बारह व्रतों का पालन कर सकेगा। मैं तेरे साथ ही हूं। मैं भी व्रत ग्रहण करूंगा। तुझे मेरे पास ही रहना है न। अपने साथ-साथ आनन्द से व्रतपालन करेंगे। अब तू नौकर और मैं सेठ नहीं रहेंगे। अपना सम्बन्ध सार्धमिक का बनेगा। तू मेरा सार्धमिक बन्धु बनेगा।

हां, एक बात है, जब कभी तेरा मन व्रतपालन में शिथिल बन जाय, ढीला पड़ जाय तब मुझे बात बता देना। और, मेरा मन कभी ढीला पड़ जायेगा तो मैं तुझे बता दूंगा। इससे अपने एक-दूसरे के सहायक बन जायेंगे। अपनी धर्मआराधना बहुत ही अच्छी होगी।

नरवीर का हृदय हर्ष से गद्‌गद्‌ हो गया। उसकी आंखें हर्षाश्रु से भर आयीं। उसने आढ़र श्रेष्ठि के चरणों में प्रणाम किया और कहा : 'हे पूज्य, आप कहेंगे तब अपने गुरुदेव के पास जाकर व्रत अंगीकार करेंगे।'

धर्माराधना के मार्ग में यदि कोई साथी-संगी मिल जाता है तो अपूर्व उत्साह से धर्माराधना सम्पन्न होती है। विवेकी और समझदार साथी होने से, मोक्षमार्ग की विकट अटवियों से मनुष्य सरलता से गुजर जाता है। यदि पुण्योदय होता है तो ही विवेकी साथ मिलता है। नरवीर का पुण्योदय था तभी आढ़र श्रेष्ठि जैसे विवेक-सम्पन्न साथी मिल गये। दोनों में सरलता

थी, निर्दयता थी। दोनों में समझदारी थी और गुणसमृद्धि थी। इसलिये, गुरुदेव के अल्प परिचय में ही उन्होंने व्रतमय गृहस्थधर्म समझ लिया और पा भी लिया। शुभ दिन और शुभ समय में, गुरुदेव ने दोनों को बारह व्रत प्रदान किये। दोनों हर्ष विभोर हो गये। आढ़र श्रेष्ठि ने वंदन कर गुरुदेव को कहा : 'गुरुदेव, आपने हम पर परम उपकार किया है, आप फरमाईये ! मैं आपको क्या गुरुदक्षिणा दूं ?'

गुरुदेव ने कहा : 'महानुभाव, जैन श्रमण गुरुदक्षिणा ग्रहण नहीं करते हैं। वे तो निर्मम और निःसंग होते हैं। वे प्रत्युपकार की आशा रखे बिना धर्मोपदेश देते रहते हैं।

'तो फिर मैं आपको क्या भक्ति करूं ? मुझे कोई आज्ञा देकर अनुगृहित करें।' आढ़र श्रेष्ठि ने अति अहोभाव व्यक्त किया। गुरुदेव ने कहा : 'महानु-भाव, एक भव्य जिनमन्दिर का निर्माण कराकर पुण्यानुबन्धी पुण्य उपार्जन करो।

आढ़र श्रेष्ठि ने गुरुदेव का उपदेश सहर्ष स्वीकार किया और जिनमंदिर के निर्माण का कार्य आरम्भ कर दिया।

उधर, आचार्यदेव ने एकशिला नगरी से विहार करने की बात कर दी। चूंकि चातुर्मास काल (वर्षाकाल) नजदीक था। आढ़र श्रेष्ठि ने (साथ में नरवीर ने भी) गुरुदेव को एकशिला नगरी में ही वर्षाकाल व्यतीत करने का आग्रह किया। गुरुदेव ने विनती स्वीकार कर ली। आढ़र और नरवीर के संवेग में अभिवृद्धि हुई। गुरुदेव की करुणा से दोनों अभिभूत हो गये।

आढ़र ने नरवीर को कहा : 'नरवीर, अपना महान् पुण्योदय है। गुरुदेव यहां वर्षाकाल व्यतीत करेंगे। अपने को निरन्तर धर्मोपदेश का श्रवण मिलेगा। गुरुदेव ने अपनी आत्मा में जो धर्मबीज बोये हैं, वे धर्मबीज अंकुरित होंगे। व्रतपालन में हमें दृढ़ता प्राप्त होगी। महान् उपकार किया है गुरुदेव ने हम पर। इस उपकार का बदला किस जनम में चुकायेंगे उन्होंने अपने दोनों जन्म सुधार दिये। यह जनम और आनेवाला जनम...।' बोलते-बोलते आढ़र का कठ अवरुद्ध हो गया नरवीर की आंखें भी गीली हो गई।

इस प्रकार दोनों का सम्यग्दर्शन निर्मल होता चला। गुरुश्रद्धा ने दोनों को परमात्मभक्त बनाया और धर्मचुस्त बनाया। दोनों प्रतिदिन परमात्मपूजा करते हैं, गुरुसेवा करते हैं, दुःखी जीवों की अनुकम्पा करते हैं और औचित्यपूर्ण जीवनव्यवहार करते हैं। फलस्वरूप दोनों महानुभाव नगर में जनप्रिय बने और श्रद्धेय बने।

ऐसे गीतार्थ ज्ञानी पुरुषों के चरणों में जीवन समर्पित कर, उनके मार्ग-दर्शन में जीवन जीने से अनेक लाभ प्राप्त होते हैं। इसलिए कहता हूँ कि ऐसे किसी महापुरुष के हाथों में आपके जीवन की बागडोर सौंप दो। उनका मार्गदर्शन ग्रहण कर पुरुषार्थ मार्ग पर अग्रसर होते रहो। राजा कुमारपाल के जीवन चरित्र में आपको यही बात जानने को मिलेगी-गुरुसमर्पण !

गुरुसमर्पण का बीज है गुरुप्रीति। प्रारम्भ होता है गुरुप्रीति से। जंगल में नरवीर को गुरुप्रीति हो गई थी। एकशिला नगरी में आने के बाद गुरु-भक्ति जाग्रत हुई...गुरु की शरण ग्रहण की और गुरुसमर्पण कर दिया। वैसे आढ़र श्रेष्ठि के मन में भी गुरूप्रीति...भक्ति...शरणागति और समर्पणभाव जाग्रत हुआ। यह सब असाधारण था, अपूर्व था। इसलिये ये सारे सम्बन्ध दूसरे जन्मों तक चलते रहे। और प्रीतिभक्ति वगैरह भाव वृद्धिगत होते रहे, विकसित होते रहे। उनके जीवन पवित्र...पवित्रतम बनते गये।

मोक्ष मार्ग का जीवन जीने के लिये ज्ञानी-संयमी महापुरुषों का मार्ग-दर्शन आवश्यक होता ही है। आढ़र और नरवीर को आचार्य श्री यशोभद्र सूरीश्वरजी का मार्गदर्शन मिलता रहा।

एक दिन, आढ़र श्रेष्ठि नरवीर के साथ परमात्मापूजा करने जिनमंदिर गये। आढ़र श्रेष्ठि पूजन के लिये पुष्प, फल, नैवेद्य आदि श्रेष्ठ सामग्री लाये थे। उल्लसित भाव से उन्होंने पूजा की। नरवीर भी उस सामग्री से पूजा कर सकता था, परन्तु उसने सोचा—'यह पूजन-सामग्री मेरे सेठ की है। मुझे मेरी सामग्री से पूजा करनी चाहिये। मेरे पास पाँच कौड़ी हैं.. पाँच कौड़ी के पुष्प खरीद कर, उन पुष्पों से मैं परमात्मा की पूजा करूं...।' ऐसा सोच कर, मन्दिर के बाहर जाकर, माली से फूल खरीदे और उन फूलों से परमात्मा की पूजा की। पुष्पपूजा करते हुए उसके हृदय में अपूर्व भक्तिभाव उभरा और उसने अद्भुत पुण्यानुबन्धी पुण्य उपार्जन कर लिया। वह पुण्यानुबन्धी पुण्य था आनेवाले जन्म में राजा बनने का ! हालांकि नरवीर नहीं जानता था कि उसने वैसा पुण्यकर्म बांध लिया है। कर्मबन्धन के विषय में तो पूर्ण ज्ञानी ही बता सकते हैं। हमें तो निष्काम भावना से शुभ कार्य करते रहना है।

पर्युषण पर्व आया। एकशिला नगरी को धर्मयौवन आया। आचार्यदेव श्री यशोभद्रसूरीश्वरजी की अद्भुत प्रेरणा को पाकर हजारों स्त्री-पुरुषों ने विशिष्ट धर्मआराधना शुरू की।

संवत्सरी महापर्व के अगले दिन, विशेष कार्य से नरवीर को बाहर गाँव जाना पड़ा। दूसरे दिन जब वह आया, सेठ का घर बन्द था। सभी उपाश्रय

में प्रवचन सुनने गये थे। नरवीर भी उपाश्रय पहुंचा। जाकर ऐसी जगह वह बैठ गया कि आढ़र श्रेष्ठि उसको देख लें। सेठ ने नरवीर को देख लिया। सेठ ने सोचा : 'नरवीर ने आज सुबह से कुछ खाया-पीया नहीं होगा, उसको भोजन के लिये भेज दूं।' उन्होंने सेठानी को घर जाने का इशारा किया। सेठानी ने पुत्रवधू को घर भेजा। नरवीर भी घर गया। नरवीर को मालूम हुआ कि आज तो संवत्सरी पर्व है और सबको उपवास है...। उसने सेठ की पुत्रवधू को कह दिया : 'बहनजी आप सभी को उपवास है। मैं भी आज उपवास करूंगा। मेरे लिये भोजन नहीं बनाना। मैं वापस उपाश्रय जाता हूं। उपवास का पच्चक्खाण कर लूंगा।'

नरवीर उपाश्रय गया। प्रवचन पूर्ण होने पर उसने गुरुदेव से उपवास का पच्चक्खाण लिया। नरवीर के जीवन में यह पहला ही उपवास था। उसने कभी भी पहले उपवास नहीं किया था। आज उसको अपूर्व हर्ष हो रहा था। आढ़र श्रेष्ठि और उनके परिवार को भी बहुत आनन्द हो रहा था। 'नरवीर ने आज उपवास किया है...!' यह बात परिवार में अनुमोदन का विषय बन गयी थी। आढ़र श्रेष्ठि का परिवार गुणानुरागी था। और जो गुणानुरागी होते हैं वे गुणों की प्रशंसा करते ही हैं। गुणों की प्रशंसा करने से गुणवानों की गुणवृद्धि होती है और गुणों की दृढ़ता प्राप्त होती है।

घर में या समाज में जिस गुण की प्रशंसा होती है, जिस कार्य की प्रशंसा होती है, उस गुण और उस कार्य को बढ़ावा मिलता है। लोग उस गुण के प्रति उस कार्य के प्रति आकर्षित होते हैं। इसलिये गुणवानों की प्रशंसा करते ही रहो।

नरवीर का उपवास शान्ति से हो गया। पारणे के दिन, आढ़र श्रेष्ठि के साथ नरवीर ने परमात्मा की पूजा की, मुनिराज को भिक्षा दी और बाद में पारणा किया। आढ़र श्रेष्ठि ने नरवीर को अपने पास बिठा कर पारणा करवाया। सेठ के पुत्रों ने, पुत्रवधूओं ने...सब ने आग्रह कर नरवीर को भोजन कराया। उत्साह, उमंग...और उल्लास इतना था कि वे लोग भूल गये कि नरवीर को यह प्रथम उपवास का पारणा है। सब परोसते गये और नरवीर खाता गया...! नरवीर को तो पहला ही पारणा था। इसलिये क्या खाना, कितना खाना...कुछ मालूम नहीं था! जिनको मालूम था वे लोग उत्साह में थे पारणा कराने के!

पारणा हो गया। नरवीर अपने कमरे में जा कर आराम करने लगा। थोड़े समय में ही उसके पेट में दर्द पैदा हुआ। वह दर्द सहता रहा। दर्द बढ़ता चला। आढ़र सेठ कुछ काम से नरवीर के कमरे में गये। नरवीर को

दर्द से कराहते देखा। सेठ उसके पास बैठ गये। दर्द की गम्भीरता देखते हुए उन्होंने तुरत वैद्य को बुलावा भेजा। परिवार इकट्ठा हो गया। घरेलू उपचार शुरू कर दिये। सेठ नरवीर के सर पर हाथ फेरते रहे और आश्वासन देते रहे। वैद्य आये। उन्होंने उपचार शुरू कर दिये। वैद्य ने सेठ को दर्द की गम्भीरता इशारे से बता दी। सेठ ने नरवीर का सर अपने उत्संग में लेकर श्री नवकार मन्त्र सुनाना शुरू कर दिया। परिवार के लोगों की आँखें गीली हो गईं। सेठ ने नरवीर के मन को धर्म ध्यान में जोड़ने का भरसक प्रयत्न किया। उसको समता-समाधि देने का प्रयत्न किया। नरवीर मृत्यु के निकट जा रहा था। उसका मन विरक्त था। संसार की घटनाओं से उसका मन मुक्त था। इसलिये राग-द्वेष से भी मुक्त था उसका मन। फिर भी तीव्र वेदना उसके मन को विचलित कर रही थी। मृत्यु का उसको भय नहीं था, जीवन से कोई लगाव नहीं था।

नरवीर का जीवन-दीप बुझ गया।

सेठ आढ़र रो पड़े। परिवार रो पड़ा। नरवीर की मृत्यु से सारी एकशिला नगरी शोकमग्न हो गई। सर्वत्र नरवीर के गुणों की प्रशंसा होने लगी। आढ़र श्रेष्ठि और उसके परिवार को, गुरूदेव श्री यशोभद्रसूरिजी ने आश्वासन देते हुए कहा :

'महानुभाव, नरवीर अपने मनुष्य जीवन को सफल कर गया है। उसने सम्यग्दर्शन का प्रकाश पाया, और व्रतमय जीवन स्वीकार किया। उसकी आत्मा धर्मरंग से रंग गयी है। उसकी मृत्यु समाधि पूर्वक हुई है। इसलिये तुम शोक मत करो। जन्म के साथ मृत्यु जुड़ी हुई है। सभी को एक दिन जाना है।

नरवीर की तरह मृत्यु से निर्भय बनो। नरवीर की तरह जीवन का मोह त्यागो। समाधिमृत्यु की कामना करते हुए धर्ममय जीवन जीते रहो।

नरवीर के गुणों को तो मैं भी नहीं भूल सकता हूँ। क्या पता, नरवीर के प्रति और तुम्हारे प्रति मेरे हृदय में वात्सल्य की धारा अविरत बह रही है। लगता है कि आनेवाले जन्म में पुन: अपना मिलन होगा! अपनी मोक्षयात्रा निरंतर आगे बढ़ती रहेगी।'

सद्गुरू के समागम से, उन की प्रेरणा से, सहानुभूति से आढ़र श्रेष्ठि को शान्ति मिली। शोकमग्न हृदय शोकमुक्त होता चला। उन का वैराग्य भाव बढ़ता चला। जीवन की क्षणभंगुरता का अंदाजा लग गया। उन्होंने अपने मन को विशेष रूप से धर्माराधना में जोड़ा।

उत्तम आत्माओं की यही निशानी है। वे हर घटना में से अच्छी प्रेरणा ग्रहण करते हैं। अच्छा बोध ग्रहण करते हैं।

ग्रन्थकार आचार्यदेव, तीसरे अध्याय के प्रारम्भ में यह बात बताते हैं कि—सद्धर्म के श्रवण से सात्त्विक मनुष्य पापरहित बनता है, तत्त्व-बोध प्राप्त करता है और परम संवेगी बनता है। धर्मतत्त्व की उपादेयता जान कर, श्रावक धर्म स्वीकार करने की इच्छा वाला बनता है। वह व्रत पालन करने को अपनी शक्ति का सूक्ष्मता से विचार करता है। यदि वैसी शक्ति होती है तो वह व्रत ग्रहण करने के लिये तत्पर बनता है।

इस विषय में ग्रन्थकार आचार्यश्री कुछ विशेष बातें बताते हैं। और नरवीर मर कर कहां जनमता है... क्रमशः

सौजन्य से :

ARBEITS INDIA
Export House recognised by Govt. of India
Proprietor : **SANJIB BOTHRA**
8/1, MIDDLETON ROW,
5th Floor, Room No. 4
CALCUTTA-700 001
Phone : 201029/6256/4730
Telex : 021-2333 ARBI IN
Fax No. : 0091-33290174

पूर्वानुवृत्ति

क्रमांक	वि० सं०	तिथि, वार	आचार्य का नाम	प्रतिमा लेख/ स्तम्भ	प्रतिष्ठास्थान	संदर्भ ग्रन्थ
५९.	१४७७	,,	,,	शांतिनाथ की धातु की चौबीस प्रतिमा का लेख	सहस्त्रफणा पार्श्वनाथ जिनालय, बम्बावाली शेरी, राधनपुर	मुनि विशालविजय पूर्वोक्त— लेखांक १००
६०.	(१४)७८	वैशाख सुदि ६ सोमवार	जयानन्दसूरि	पार्श्वनाथ की प्रतिमा का लेख	अनुपूर्ति लेख, आबू	अर्बुदप्राचीन जैन लेख संग्रह लेखांक ६६०
६१.	१४८४	वैशाख सुदि ११ रविवार	जिनदत्त (देव) सूरि	धातु की चौबीसी जिन-प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	कल्याण पार्श्वनाथ देरासर, वांसनगर	मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखांक ५३४
६२.	१४८७	मार्गशीर्ष सुदि ९ शुक्रवार	जिनदेवसूरि	श्रेयांसनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	मुनि सुव्रतनाथ जिनालय, खाखाडो, खंभात	वही, भाग २ — लेखांक १०२५

६३.	१४९३	माघ सुदि ८ शनिवार	धनदेवसूरि	पार्श्वनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	आदिनाथ जिनालय राजलदेसर	नाहटा, पूर्वोक्त—लेखांक २३४७
६४.	१४९९	कार्तिक सुदि १५ गुरुवार	···तिलकसूरि	धर्मनाथ की धातु की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	वीर जिनालय, बीकानेर	वही, लेखांक १३४१
६५.	१४९९	माघ सुदि ६ सोमवार	मुनितिलकसूरि के पट्टधर गुणाकरसूरि	सुमतिनाथ की प्रतिमा का लेख	आदिनाथ जिनालय सेठों के हवेली के पास, उदयपुर	नाहर, पूर्वोक्त—भाग २, लेखांक १९०१
६६.	१४९९	फाल्गुन वदि २ गुरुवार	जयानन्दसूरि, मुनितिलकसूरि, गुणाकरसूरि प्रतिमा का लेख	मुनिसुव्रत की धातु की चौबीसी प्रतिमा का लेख	पार्श्वनाथ जिनालय, सरदारशहर	नाहटा पूर्वोक्ति लेखांक २३८४
६७.	१५००	वैशाख सुदि ५ गुरुवार	श्रीसूरि	शांतिनाथ की धातु की चौबीसी प्रतिमा का लेख	शांतिनाथ जिनालय, कडुवामत की शेरी, राधनपुर	मुनि विशालविजय पूर्वोक्ति-लेखांक १३२

६८.	१५०१	माघ सुदि १० सोमवार	सुमतिसूरि, गुणाकरसूरि	चन्द्रप्रभु की चौबीसी प्रतिमा का लेख	पंचायती मन्दिर, जयपुर	विनयसागर, पूर्वोक्ति लेखांक ३४६
६९.	१५०१	फाल्गुन सुदि १३ शनिवार	मुनितिलकसूरि	शांतिनाथ की प्रतिमा का लेख	,,	नाहर, पूर्वोक्ति भाग २ लेखांक ११४५
७०.	१५०३	मार्गशीर्ष वदि १०	,,	संभवनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	शांतिनाथ जिनालय, रतलाम	विनयसागर, पूर्वोक्ति लेखांक ३७०
७१.	१५०३	मार्गशीर्ष सुदि ६	मलयचन्द्रसूरि	सुमतिनाथ	चन्द्रप्रभजिनालय, जैसलमेर	नाहर, पूर्वोक्ति भाग-३, लेखांक २३२०
७२.	१५०४	माघ सुदि ५ रविवार	गुणाकरसूरि के सान्निध्य में मुनितिलकसूरि	श्रेयांसनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि पार्श्वनाथ जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्ति लेखांक ९०४
७३.	१५०५	माघ वदि ७	मुनितिलकसूरि	मुनिसुब्रत की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	शांतिनाथ जिनालय, रतलाम	विनयसागर, पूर्वोक्ति लेखांक ३९७

७४.	१५०६	माघ वदि ३ गुरुवार	,,	वासुपूज्य की धातु की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि पाश्वंनाथ जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक ९००
७५.	१५०६	माघ सुदि ५	,,	धर्मनाथ की प्रतिमा का लेख	अस्पष्ट	नाहर, पूर्वोक्त— भाग १, लेखांक २१३
७६.	१५०७	भाद्रपद सुदि १३ शुक्रवार	गुणदेवसूरि के संतानीय जिनदेवसूरि	सुविधिनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	महावीर निनालय, पामधुनी, मुम्बई	मुनि कान्तिसागर, पूर्वोक्त भाग-१, लेखांङ्क १०६
७७.	१५०७	माघ सुदि ५ गुरुवार	मुनितिलकसूरि	सुमतिनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	बावन जिनालय, पेथापुर	मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग-१, लेखांक ७०४
७८.	१५०८	वैशाख सुदि ५ सोमवार	,,	धर्मनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	जैन मन्दिर, पटना (विहार)	नाहर, पूर्वोक्त— भाग-१, लेखांक-२७७

७९.	१५०८	,,	,,	श्रेयांसनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	गौड़ीपार्श्वनाथ जिनालय, पामधुनी, मुम्बई	मुनि कान्तिसागर, पूर्वोक्त, भाग-१, लेखांक १११
८०.	१५०८	मार्गशीर्ष वदि २ बुधवार	मुक्तिवि⋯सूरि	आदिनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	पंचायती मन्दिर, जयपुर	विनायसागर, पूर्वोक्त लेखांक ४३४
८१.	१५०८	मार्गशीर्ष सुदि ३ शुक्रवार	गुणदेवसूरि के संतानीय जिनदेवसूरि	शांतिनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	जैन मन्दिर, बोटाड	विजयधर्मसूरि, पूर्वोक्त— लेखांक २३५
८२.	१५०९	माघ वदि ९ मंगलवार	वीरदेवसूरि के पट्टधर पासदेवसूरि	आदिनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	जैन मन्दिर, चांदवाड़, नासिक	मुनि कान्तिसागर, पूर्वोक्त, लेखांक ११५
८३.	१५११	ज्येष्ठ वदि ९ रविवार	गुणदेवसूरि के संतानीय जिनदेवसूरि के पट्टधर रत्नदेवसूरि	कुन्थुनाथ की धातु की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	नेमिनाथ जिनालय, सेठ की शेरी, राधनपुर	मुनि विशालविजय पूर्वोक्त, लेखांक १७६

८४.	१५१२	वैशाख वदि ३ शुक्रवार	,,	विमलनाथ की धातु की चौबीसी प्रतिमा का लेख	शांतिनाथ देरासर, वीसनगर	मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखांक ५०४
८५.	१५१२	पौष वदि ५ शुक्रवार	मुनितिलकसूरि	चौमुख शांतिनाथ— देरासर, अहमदाबाद	,,	वही, भाग-१ लेखांक ८९५
८६.	१५१३	वैशाख वदि ५ शनिवार	गुणदेवसूरि के संतानीय रत्नदेवसूरि	शांतिनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	कल्याणपार्श्वनाथ— देरासर, मामानी पोल, बड़ोदरा	मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग-२, लेखांक ३२
८७.	१५१३	वैशाख सुदि ५ शुक्रवार	मुनितिलकसूरि पट्टधर गुणाकरसूरि	संभवनाथ की प्रतिमा का लेख	आदिनाथ जिनालय नागौर	नाहर, पूर्वोक्त, भाग-२, लेखांक-१२६४ एवं विनयसागर, पूर्वोक्त— लेखांक ५०५
८८.	१५१३	माघ वदि ५	गुणाकरसूरि	,,	चिन्तामणिपार्श्वनाथ जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त— लेखांक ९७५

८९	१५१३	माघ सुदि ६ रविवार	,,	विमलनाथ की प्रतिमा का लेख	धर्मनाथ जिनालय, बड़ाबाजार कलकत्ता	नाहर, पूर्वोक्त— भाग-१, लेखांक-१०१
९०.	१५१५	ज्येष्ठ सुदि ५	रामदेवसूरि	कुन्थुनाथ की प्रतिमा का लेख	शीतलनाथ जिनालय, उदयपुर	वही भाग-२, लेखांक १४९०

स्व० नरेन्द्र सिंह जी बैद
की पुण्य स्मृति में

—मीरा बैद
८३-बी, विवेकानन्द रोड,
कलकत्ता-७००००६
फोन : २४१-०७१९

सरवालगच्छ का संक्षिप्त इतिहास

डा० शिव प्रसाद सिंह

निर्ग्रन्थ दर्शन के श्वेताम्बर श्रमण सम्प्रदाय के अन्तर्गत पूर्वमध्ययुग के चैत्यवासी गच्छों में सरवालगच्छ भी एक था। चन्द्रकुल (बाद में चन्द्रगच्छ) की एक शाखा के रूप में इस गच्छ का उल्लेख प्राप्त होता है। इस गच्छ के प्रवर्तक कौन थे, यह गच्छ कब अस्तित्व में आया, इस बारे में कोई सूचना प्राप्त नहीं होती।

सरवालगच्छ के इतिहास के अध्ययन के लिये सीमित संख्या में अभिलेखीय साक्ष्य, जो वि० सं० ११११० से वि० सं० १२८३/ई० सन् १०५४ से १२२७ तक के हैं, तथा एक ही ग्रन्थप्रशस्ति मिलती है।

सरवालगच्छ का उल्लेख करने वाला वि० सं० ११११०/ई० सन् १०५४ का लेख पार्श्वनाथ धातुप्रतिमा पर उत्कीर्ण है। पूरनचन्द नाहर[१] ने इस लेख की वाचना इस प्रकार दी है :

श्री सरवालगच्छे असामूकेन कारिता ।। संतु १११०..... ।

यह प्रतिमा आज सुमतिनाथ जिनालय, अजीमगंज में है।

यद्यपि इस लेख में इस गच्छ के किसी आचार्य या मुनि का उल्लेख प्राप्त नहीं होता, फिर भी सरवालगच्छ का उल्लेख करने वाला सर्वप्रथम साक्ष्य होने से महत्त्वपूर्ण है। यही बात इस गच्छ से सम्बद्ध द्वितीय लेख, जो वि० सं० ११४५/ई० सन् १०८९ का है,[२] के सम्बन्ध में कही जा सकती है।

कालक्रम की दृष्टि इस गच्छ से सम्बद्ध तृतीय लेख वि० सं० ११४९/ ई० सन् १०९३ का है, जो राधनपुर स्थित जिनालय में रखी एक धातु प्रतिमा पर उत्कीर्ण है। मुनि विशाल-विजय[४] के अनुसार इस लेख की वाचना इस प्रकार है :

सं० ११४९ माघ वदि ४ श्रीसरवालगच्छे वर्धमानाचार्य— संताने श्रीकुपांगजनागेनात्मश्रेयोर्थं कारिता ।।

इस लेख में वर्धमानसूरि के संतानीय अर्थात् श्रावकशिष्य द्वारा प्रतिमा बनवाने का उल्लेख है। सरवालगच्छ के किसी आचार्य का उल्लेख करने वाला यह सर्वप्रथम लेख है, अतः महत्त्वपूर्ण है।

इस गच्छ से सम्बद्ध वि० सं० ११५९/ई० सन् ११०३ और वि० सं० ११६४/ई० सन् ११०८ के लेख, जो राधनपुर स्थित जिनालय की धातु प्रतिमाओं पर उत्कीर्ण है,[४] लेकिन इनमें इस गच्छ के किसी आचार्य या मुनि का उल्लेख नहीं मिलता। मुनि विशालविजय ने इन लेखों की वाचना इस प्रकार दी है :

सं० ११५९ श्रीसरवालगच्छे सूहनश्राविकया सोमति दुहिवृश्रेयोर्थं कारित: ॥

सं० ११६४ फाल्गुन सु० ७ गुरौ सरवालगच्छे श्रावक मोहलाकेन कारिता।

इस गच्छ से सम्बद्ध वि० सं० ११७४/ई० सन् १११८ का एक लेख वढवाण स्थित बड़े जैन मन्दिर में एक परिकर के नीचे उत्कीर्ण है। इस लेख का कुछ अंश घिस जाने से नष्ट हो गया है। विजयधर्मसूरि ने इस लेख की वाचना इस प्रकार दी है :

सम्वत् ११७४ फाल्गुन बदि ४ श्रीसरवालसंस्थितगच्छ प्रतिपालक श्रीजिनेश्वराचार्य श्रीवर्धमानपुरे परि० महणसुत.........कनेन............ देवश्रेयार्थं श्रीसीतलदेवप्रतिमा कारिता ॥

इस लेख में सरवालगच्छीय जिनेश्वरसूरि के श्रावक शिष्य द्वारा शीतलनाथ की प्रतिमा बनवाने का उल्लेख है।

कालक्रम की दृष्टि से इस गच्छ का उल्लेख करने वाला अगला लेख वि० सं० ११८२/ई० सन् ११२६ का है, जो राधनपुर स्थित जिनालय के एक पंचतीर्थी जिनप्रतिमा पर उत्कीर्ण है। इस लेख में सरवालगच्छ के एक श्रावक शिष्य द्वारा आत्मश्रेयार्थ उक्त प्रतिमा बनवाने का उल्लेख है।

सं० ११८२ श्रीसरवालगच्छे श्रीजिनेश्वराचार्य संताने वरुणाग सुत परम (परम) ब्रह्मदेव लाहितगतपुत्रिका सीतया च आत्मश्रेयोर्थं कारिता॥

इस गच्छ से सम्बद्ध एक लेख वि० सं० ११९४/ई० सन् ११३८ का है। यह लेख भी वढवाण स्थित बड़े जैन मन्दिर में एक परिकर के नीचे उत्कीर्ण है। इस लेख में सरवालगच्छीय जिनेश्वराचार्य के एक श्रावक शिष्य देवानन्द द्वारा अपनी माता के श्रेयार्थ विमलनाथ की प्रतिमा बनवाने का उल्लेख है। मुनि विजयधर्मसूरि ने इस लेख की वाचना निम्न प्रकार से दी है :

सं० ११९४ माघ सुदि ६ भ् (भौ) में श्रीवर्धमानपुरे श्रीसरवालगच्छे श्रीजिनेश्वराचार्यसंताने ठ० देवानन्देन स्वमातुः सज्जणिश्रेयोर्थं श्रीविमलनाथ प्रतिमा कारापिता॥

सरवालगच्छ से सम्बद्ध वि० सं० १२०८/ई० सन् ११५२ का है। यह लेख भी वढवाण स्थित बड़े जैन मन्दिर में एक परिकर के नीचे उत्कीर्ण है। इस लेख में सरवालगच्छीय जिनेश्वराचार्य के श्रावक शिष्य नेमिकुमार की भार्या लक्ष्मी द्वारा आत्मश्रेयार्थ जिनप्रतिमा बनवाने का उल्लेख है। मुनि विजयधर्मसूरि के अनुसार लेख का मूलपाठ इस प्रकार है :

सम्वत् १२०८ ज्येष्ठ (ष्ठ) सुदि २ बुधे श्रीसरवालगच्छे श्रीजिनेश्वराचार्यसंताने वोहासुतवता नेमिकुमारेण भार्या लक्ष्मी आत्मश्रेयार्थं प्रतिमा कारिता ।।

सरवालगच्छ से सम्बद्ध वि० सं० १२०८/ई० सन् ११५२ का एक अन्य लेख भी मिला है, जो जैसलमेर स्थित चन्द्रप्रभ जिनालय की एक चौबीसी जिनप्रतिमा पर उत्कीर्ण है। इस लेख से ज्ञात होता है कि सरवालगच्छीय जिनेश्वराचार्य के श्रावक शिष्य द्वारा यह प्रतिमा आत्मश्रेयार्थ बनवायी गयी। पूरनचन्द नाहर ने इस लेख की वाचना इस प्रकार दी है :

सं० १२०८ श्रीसरवालगच्छे श्रीजिनेश्वराचार्यैः वालचन्द किसुणारी महणीश्रेयसे कारिता ।।

इस गच्छ से सम्बद्ध अगला लेख वि० सं० १२१२/ई० सन् ११५६ का है, जो वढवाण स्थित बड़े जैन मन्दिर में एक परिकर के नीचे उत्कीर्ण है। इस लेख में भी सरवालगच्छीय जिनेश्वराचार्य के एक श्रावक शिष्य द्वारा अपनी माता के श्रेयार्थ वासुपूज्य की प्रतिमा बनवाने का उल्लेख है। लेख की वाचना इस प्रकार है :

सं० १२१२ माघ सुदि ११ श्रीवर्धमानपुरे श्रीसरवालगच्छे श्रीजिनेश्वराचार्यसंताने आमचंडसुतेन वोसिना मातुः मोहिणिश्रेयोर्थं.........श्रीवासुपूज्य प्रतिमा कारिता ।।

सरवालगच्छ से सम्बद्ध एक प्रतिमा लेख वि० सं० १२२६/ई० सन् ११७० का भी है। यह प्रतिमा आज जैसलमेर स्थित महावीर जिनालय में है, जिसे सरवालगच्छीय वर्धमानाचार्य के एक श्रावक शिष्य द्वारा बनवाया गया। नाहर ने इस लेख की वाचना इस प्रकार दी है :

ॐ सं० १२२६ माघ सुदि १३ गुरौ श्रीसरवालगच्छे श्रीवर्धमानाचार्यसंताने रावड पुत्र माणु तथा भार्या वालेवि (?) सहितेन सुत देदा कबडि आलणकेन आत्मश्रेयोर्थं कारिता ।।

इसके अलावा वि० सं० १२५१/ई० सन् ११९५ का भी एक लेख इस गच्छ से सम्बद्ध हैं। यह लेख राधनपुर स्थित जैन मन्दिर में रखी धातु की

एक परिकर की गादी के नीचे उत्कीर्ण है। इस लेख में सरवालगच्छीय वर्धमानाचार्य के एक श्रावक शिष्य द्वारा अपने कुटुम्ब के श्रेयार्थ शांतिनाथ की प्रतिमा बनवाने का उल्लेख है। मुनि विशालविजय ने उक्त लेख का मूलपाठ इस प्रकार दिया है :

१—सम्वत् १२५१ आषाढ़ सुदि ९ रवौ श्रीसरवालगच्छे श्रीवर्धमानाचार्यसंताने श्रे० पुनहइ सुत जसपाल तत्सुत श्रे० आमकुमार मणिकाभ्यां

२—पुत्र लूणिगवरदेव तथा आस्वसिरि अभयसिरि प्रभृति स्वकुटुम्बमानुषोयेताभ्यां श्रीशांतिनाथ प्रतिमा कारापिता ।।

सरवालगच्छ से सम्बद्ध एक लेख वि० सं० १२५५/ई० सन् ११९९ का भी है। यह लेख एक चौबीसी जिनप्रतिमा पर उत्कीर्ण है, जो आज चन्द्रप्रभ जिनालय जैसलमेर में है। इस लेख में सरवालगच्छीय जिनेश्वराचार्य के श्रावक शिष्य द्वारा प्रतिमा बनवाने की बात कही गयी है। लेख का पाठ इस प्रकार है :

सं० १२५५ मार्ग सुदि १५ रवौ श्रीसरवालगच्छे श्रीजिनेश्वराभय संताने व्य० साढदेव भार्या अवियदेविश्रेयोर्थं सुत वीमकेन प्रतिमा कारिता ।।

इस गच्छ का उल्लेख करने वाला एक लेख वि० सं० १२५८/ई० सन् १२०२ का भी है, जो धातु की एक पंचतीर्थी प्रतिमा पर उत्कीर्ण है। इस लेख में सरवालगच्छ के किसी आचार्य या मुनि का उल्लेख नहीं मिलता, केवल प्रतिमा बनवाने वाले श्रावक का ही नाम मिलता है। मुनि विशालविजय ने इस लेख की वाचना की है, जो इस प्रकार है :

सं० १२५८ माघ वदि १० श्रीसरवालगच्छे वासुअलेनजि (जन) नी माढा श्रेयोर्थं प्री (प्र) तमां (मा) कारिता ।।

सरवालगच्छ का उल्लेख करने वाला अन्तिम लेख वि० सं० १२८६/ई० सन् १२३० का है, जो पार्श्वनाथ की धातु प्रतिमा पर उत्कीर्ण है। इस लेख में सरवालगच्छीय वर्धमानसूरि के शिष्य जिनेश्वरसूरि द्वारा पार्श्वनाथ की प्रतिमा प्रतिष्ठापित करने का उल्लेख है। मुनि कान्तिसागर ने इस लेख की वाचना इस प्रकार दी है :

सम्वत् १२८६ (वर्षे) वै० सुद ५ शुक्र श्री सरपुनवास्तव्य: श्रीमालज्ञातीय श्रे० लाखू सावकुमार भार्या ....दे० सयार्थं (श्रेयार्थं) संखीसर (शंखेश्वर) वर्ति श्रीपार्श्वनाथबिंबं कारापितं प्रतिष्ठितं श्रीसरवालगच्छे श्रीवर्धमानसूरि शिष्य जिनेश्वरसूरिभि: ।।

अभिलेखीय साक्ष्यों के उक्त विवरणों से स्पष्ट है कि कई लेखों में वर्धमानाचार्य और जिनेश्वराचार्य ये दो नाम आये हैं, किन्तु वि० सं० १२८६/

ई० सन् १२३० के लेख को छोड़कर किसी अन्य लेख में इन्हें गुरु-शिष्य नहीं बतलाया गया है। इस दृष्टि से उक्त लेख अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और यह कहा जा सकता है कि सरवालगच्छ में पट्टधर आचार्यों को यही दो नाम पुनः पुन प्राप्त होते थे।

उक्त साक्ष्यों के आधार पर सरवालगच्छ की गुरुपरम्परा की एक तालिका निर्मित होती है, जो इस प्रकार है :

?
|
[?] वि० सं० ११११०/ई० सन् १०५४
| प्रतिमालेख (आचार्य का नाम अनुपलब्ध)
|
[?] वि० सं० ११४५/ई० सन् १०८९
| प्रतिमा लेख (आचार्य का नाम अनुपलब्ध)
| वर्धमानचार्य वि० सं० १०९३ में इनके श्रावक शिष्य ने जिनप्रतिमा निर्मित करायी
वि० सं० ११५९/ई० सन् ११०३
और
वि० सं० ११६४/ई० सन् ११०८ के
यद्यपि किसी आचार्य का उल्लेख नहीं मिलता किन्तु सम्भवतः उक्त प्रतिमाओं के निर्माता भी वर्धमानाचार्य के श्रावकशिष्य रहे होंगे।
जिनेश्वराचार्य वि० सं० ११७४/ई० सन् १११८
प्रतिमा लेख
(वि० सं० ११८२/ई० सन् ११२६,
वि० सं० ११९४/ई० सन् ११३८,
वि० सं० १२०८/ई० सन् ११५२ एवं
वि० सं० १२१२/ई० सन् ११५६ में इनके उपदेश से इनके श्रावक शिष्यों ने जिनप्रतिमायें बनवायीं)
वर्धमानाचार्य वि० सं० १२२६/ई० सन् ११७० एवं
वि० सं० १२५१/ई० सन् ११९५ में इनके उपदेश से इसके श्रावक शिष्यों ने जिनप्रतिमायें निर्मित करायीं
जिनेश्वराचार्य वि० सं० १२५५/ई० सन् ११९९ में

इनके श्रावक शिष्य ने इनके उपदेश से जिनप्रतिमा निर्मित करायी।

वि० सं० १२५८/ई० सन् १२०२ के प्रतिमा लेख में यद्यपि किसी आचार्य का नाम नहीं है, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त प्रतिमा भी इन्हीं की प्रेरणा से निर्मित करायी गयी रही होगी।

वि० सं० १२८६/ई० सन् १२३० में पार्श्वनाथ की प्रतिमा के प्रतिष्ठापक

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है सरवालगच्छ से सम्बद्ध एक ही साहित्यिक साक्ष्य उपलब्ध है और वह है **पिण्डनिर्युक्ति** की **शिष्यहितावृत्ति** की प्रशस्ति। इससे ज्ञात होता है कि सरवालगच्छीय ईश्वरगणि के शिष्य वीरगणि अपरनाम समुद्रघोषसूरि ने वि० सं० ११६०/ई० सन् ११०४ में दधिपद्र (वर्तमान दाहोद, गुजरात राज्य) में इस कृति की रचना की। इस कार्य में उन्हें अपने गुरु-भ्राताओं—महेन्द्रसूरि, पार्श्वदेवगणि और देवचन्द्रगणि से सहायता प्राप्त हुई। इसे नेमिचन्द्रसूरि और जिनदत्तसूरि ने अणहिलपुर-पत्तन (वर्तमान पाटन, उत्तर गुजरात) में संशोधित किया। वृत्तिकार वीरगणि ने इस प्रशस्ति में अपनी दीक्षा के पूर्व अपने गृहस्थजीवन का उल्लेख करते हुए अपने पिता का नाम वर्धमान और माता का नाम श्रीमती बतलाया है।

?

|

सरवालगच्छीय ईश्वरगणि

|

महेन्द्रसूरि | पार्श्वदेवगणि | देवचन्द्रगणि | वीरगणि अपरनाम समुद्रघोषसूरि

पिण्डनिर्युक्तिवृत्ति के लेखन में सहायक

(वि० सं० ११६०/ई० सन् ११०४ में **पिण्डनिर्युक्तिवृत्ति** के रचनाकार)

सरवालगच्छीय ईश्वरगणि के गुरु कौन थे, क्या ईश्वरगणि के शिष्यों महेन्द्रसूरि, पार्श्वदेवगणि, देवचन्द्रगणि और वीरगणि की शिष्य परम्परायें आगे चलीं या नहीं, इस सम्बन्ध में साक्ष्यों के अभाव में उत्तर दे पाना संभव नहीं।

जैसा कि हम पहले देख चुके हैं अभिलेखीय साक्ष्यों से हमें इस गच्छ के केवल दो आचार्यों—वर्धमानाचार्य और जिनेश्वराचार्य के नाम ज्ञात होते हैं, किन्तु **पिण्डनियुक्तिवृत्ति** के प्रशस्तिगत सरवालगच्छीय मुनिजनों से उनका कोई भी सम्बन्ध ज्ञात नहीं होता। इससे यह सम्भावना व्यक्त की जा सकती है कि ये दोनों परम्परायें सरवालगच्छ की दो अलग-अलग शाखाओं का प्रतिनिधित्व करती हैं। इस गच्छ के प्रथम आचार्य कौन थे, ये शाखायें कब अस्तित्व में आयीं, ये सभी प्रश्न इस वक्त तो अनुत्तरित रह जाते हैं। वि० सं० की १३वीं सती के पश्चात तो इस गच्छ से सम्बद्ध प्रमाणों का पूर्णतया अभाव है अतः यह कहा जा सकता है कि १४वीं शती के प्रारम्भ में ही इस गच्छ का अस्तित्व समाप्त हो गया होगा और ऐसी परिस्थिति में इस गच्छ के अनुयायी मुनिजन और श्रावक किन्हीं अन्य गच्छ में सम्मिलित हो गये होगें।

सरवाल जैनों के किसी ज्ञाति का नाम था अथवा किसी नगर या ग्राम विशेष का नाम रहा, जिसके आधार पर इस गच्छ का यह नामकरण हुआ, यह अन्वेषणयी है।

पादटिप्पणी :

१—पूरनचन्द नाहर—**जनलेखसंग्रह** भाग १ (कलकत्ता १९१८ ई०) लेखांक १

२—मुनि विशालविजय—**राधनपुरप्रतिमालेखसंग्रह** (यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, भावनगर, ई० सन् १९६०) लेखांक ६

३—वही, लेखांक ७

४—वही, लेखांक ९, १०

५—विजयधर्मसूरि—**प्राचीनलेखसंग्रह** (यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, भावनगर ई० सन् १२२९) लेखांक ४

६—मुनि विशालविजय—पूर्वोक्त, लेखांक १२

९—विजयधर्मसूरि—पूर्वोक्त, लेखांक ७

८—वही, लेखांक ११

९—पूरनचन्द नाहर—**जैनलेखसंग्रह** भाग ३ (कलकत्ता, ई० सन् १२२९) लेखांक २२२०

१०—विजयधर्मसूरि—पूर्वोक्त, लेखांक १५

११—पूरनचन्द नाहर—पूर्वोक्त, भाग ३, लेखांक २४१५

१२—मुनि विशालविजय—पूर्वोक्त, परिशिष्ट, लेखांक १

१३—नाहर, पूर्वोक्त, भाग ३, लेखांक २२२२

१४—मुनि विशालविजय, पूर्वोक्त, लेखांक २४
१५—मुनि कान्तिसागर—**जैनधातुप्रतिमालेख** (जिनदत्तसूरि ज्ञान भंडार सुरत, १९५० ई०) लेखांक १३
१७—H. R. Kapadia—**Descriptive Catalogue of the Government Collections of Manuscripts deposited at the Bhandarbar Oriental Research Institute** Volume XVII Part III (B. O. R. I., Pune-1940 A. D.) PP 238-287.

सौजन्य से :

BOYD SMITHS PVT. LTD.

B-3/5, GILLANDAR HOUSE

8, Netaji Subhas Road,

Calcutta-700 001

Phone Office : 220-8105/2139
Resi. : 244-0629/0319

महाराजा श्रेणिक

श्रीमती राजकुमारी बेगानी

पूर्वानुवृत्ति

कुमार को राज्यभार सौंपकर महाराज प्रसेनजित मुक्त हीं नहीं प्रसन्न भो हो रहे थे श्रेणिक की योग्यता को देख-देख कर।

उनकी बीमारी बढ़ती जा रही थी। अन्तिम समय तेजी से निकट आ रहा था। अतः उन्होंने अब स्वयं को पूर्णतः धर्मआराधना में लगा दिया था। वे बारह व्रतधारी श्रावक थे। अतः सामायिक प्रतिक्रमण प्रभु भक्ति धर्म-ध्यान स्वाध्याय आदि की उन्हें आदत थी एतदर्थ पूर्णतः उन्हीं में निमग्न होकर वे अब भगवान् पार्श्वनाथ की भक्ति में डूब गये। कहा भी गया है— भगवान् पार्श्वनाथ के मन्त्र-तन्त्रों के चमत्कार की बात तो दूर रही—शुद्ध-निर्मल हृदय से भक्ति भावपूर्वक उनको किया गया एक प्रणाम, एक वन्दन भी भवसागर से पार करने में समर्थ होता है। महाराज ने अट्ठारह पाप स्थानों की निन्दा कर सभी जीवों से जानते अजानते होने वाले अपराधों के लिये तन से-मन से वचन से क्षमा याचना की और अरिहंत, सिद्ध और साधु एवं केवली प्ररुपित धर्म की शरण ग्रहण की। वे बार-बार प्रभु पार्श्व से यही प्रार्थना करते रहे—हे प्रभो मुझे जन्म-जन्म में चिन्तामणि रत्न से भी बहुमूल्य सम्यक्त्व रत्न की प्राप्ति और आपके चरणों की भक्ति प्राप्त हो।

इस प्रकार धर्म ध्यान में स्वयं को लीन कर शुभ-भावना से भावित होते हुए महाराज प्रसेनजित ने परलोक की यात्रा की।

समस्त स्वजन कुटुम्बी राजपरिवार ही नहीं पूरा मगध साम्राज्य अपने उस सम्राट को खोकर शोक संतप्त हो गया। अब कुमार श्रेणिक मगध सम्राट बन गये थे—भला उन्हें कोई अभाव अब क्यों होने लगा— उनका यौवन समुद्र की तरह उमड़ रहा था और उनका अन्तःपुर सुन्दर राजकन्याओं से भर उठा— फिर भी क्या भोग वासना कभी तृप्त होती है। यह तो घृत पड़ी अग्नि की भाँति तीव्र से तीव्र होती जाती है।

एक दिन महाराजा श्रेणिक घोड़े पर सवार होकर शिकार के लिये गए। किन्तु किसी दिव्य पुरुष के साथ शीघ्र ही लौट आए। घर आकर उसका भव्य

स्वागत और अतिथि सत्कार किया। वह अतिथि था विद्याधरों का स्वामी महाबल नामका विद्या धरेन्द्र। उस विलक्षण अतिथि को देख कर सभी अपने नैनों से उसके अनुपम सौंदर्य का पान कर रहे थे। किन्तु राजकुमारी सुसेना ने जब उस शौर्य और सौंदर्यपुंज को देखा तो एक टक देखती ही रह गयी। सखियों ने उसको इस स्थिति में देखकर मजाक करना आरम्भ कर दिया किन्तु सुसेना के हृदय में वह छवि इस प्रकार उतर गयी थी कि उसे कुछ भी सुनना अच्छा नहीं लग रहा था। वह एकान्त चाहती थी। अतः दौड़कर उद्यान में गयी सुन्दर पुष्प चुने और माला गूंथने के पूर्व उन्हें धोने सरोवर तट पर पहुंची फिर वहीं एक विशाल वृक्ष तले बैठकर चिन्तित सी हार गूंथने लगी। तभी विद्याधर महाबल भी उद्यान की शोभा निरखता हुआ वहाँ आया—और सौंदर्य के आभा वल्लभ में दिप्-दिप् करती सुसेना को देखा तो दंग रह गया। उनका मन मुग्ध हो गया हरे पत्तों के मध्य खिले हुए उस गुलाब सी रूपसी को देखकर पद आहट सुनकर सुसेना ने दृष्टि उठायी तो चौंक गयी। तुरन्त पूछ बैठी—'कौन हैं आप ? कहाँ से आये हैं ?' महाबल ने कहा—'मैं ? मैं हूँ मगधराज श्रेणिक का अतिथि महाबल।

'और तुम कौन हो ? देवकन्या या नागकन्या ?' मैं तो एक साधारण मानवी हूँ मगधराज की छोटी बहिन सुसेना। उसके आरक्त कपोल खेद भींगी देह, सलज्जा नेत्रों की उठती-गिरती चंचल पलकों को देखकर महाबल उसके मनोभावों को ताड़ गए थे। अतः समीप आकर बोले—**किसके लिए गूंथ रही हो यह** सुन्दर हार ?

जो इसका मूल्य चुकाए उसी के लिये ? जानते हैं आप बहुत मूल्यवान है यह हार ? 'जानता हूँ और क्रय के लिये उत्सुक भी।' इसका मूल्य चुका पाएंगे आप ? प्रयास करूँगा अपना सर्वस्व देकर। 'तो लीजिए' कहती हुई सुसेना ने महाबल के गले में प्रेम पुलकित तन-मन और काँपते हाथों से हार पहना दिया धन्य हो उठे महाबल। उन्होंने भी अपनी भुजाओं के हार को उसके गले में डालकर उसे आलिंगन में ले लिया।

दूर झरोखे पर खड़े मगधराज ने उस दृश्य को देखा तो क्रोध से तमतमा उठे। उन्होंने तुरन्त धनुष पर बाण चढ़ाया और महाबल को समाप्त करना ही चाहते थे महारानी ने पीछे से आकर उनका हाथ पकड़ लिया। कहने लगी—बिना सोचे बिचारे आप ये कैसा अनर्थ करने जा रहे हैं। वह है आपकी छोटी बहिन सुसेना और पुरुष है आपका वही प्रिय अतिथि जिसकी बड़ाई करते आप थकते नहीं। यदि ये दोनों परस्पर प्रेम करते हैं तो यह तो हमारा परम सौभाग्य है। भला महाबल सा वर आपको बहिन सुसेना के लिये कहाँ मिलेगा

घर बैठे ही आपकी तो मन की मुराद पूरी हो गयी है। बहुत चिन्तित थे न आप उसके विवाह के लिये। तो चलिये धूमधाम से विवाह सम्पन्न कर अपना कर्तव्य पूरा करिये।

महारानी अपनी ननद सुसेना के पास धीरे-धीरे चलती हुई पहुंची। उसे देखकर दोनों कांप उठे—महारानी ने व्यंग्यपूर्वक कहा—कैसे अतिथि हैं आप विद्याधर राज ? जिसके घर ठहरे उसकी बहुमूल्य वस्तु ही चुरा ली ?

यह सुनकर सुसेना आनन्द से पुलकित बनी—'मेरी अच्छी भाभी कहती हुई महारानी से लिपट गयी।

दूसरे ही दिन मगधराज ने खूब धूम-धाम से सुसेना का विवाह विद्याधरराज के साथ करा दिया और जी भरकर सुवर्ण, मणि-मुक्ता दहेज में दिये। कुछ दिनों श्वसुरालय में मौज करने के पश्चात् विद्याधर महाबल सुसेना को विमान में बैठाकर स्वदेश की ओर चल दिये।

बेन्नातट नगर के क्रीड़ा-प्रांगण में समवयस्क कई लड़के खेल रहे थे। आज के उनके खेल का नियम था कि जो हारेगा वह जीतनेवाले को अपनी पीठ पर चढ़ाकर निश्चित स्थान पर ले जायेगा। एक आठ वर्षीय तेजस्वी सुन्दर और मेधावी लड़का क्रीड़ा में जीता और हारने वाले की पीठ पर चढ़ना चाहा किन्तु वह ढीठ शरारती लड़का उसे अपनी पीठ पर चढ़ाने को तैयार नहीं हुआ बल्कि नियम भंग के अपराध को छिपाने के लिए जो मुंह में आया उल-जुलूल बकने लगा। किन्तु उस बुद्धिमान लड़के से जब जीत नहीं सका तो बोल पड़ा—चल-चल अधिक बातें मत बना। तेरे बाप का तो ठिकाना ही नहीं है और बड़ी-बड़ी बातें बना रहा है। जा अपनी मां से पूछकर आ कहां है तेरा पिता ? उस लड़के ने तुरन्त उत्तर दिया—'नगर सेठ धनवाह मेरे पिता हैं।' 'वे तेरे नहीं तेरी मां के पिता हैं', उस लड़के ने कहा। दुःख और शर्म से भरकर वह विजयी लड़का तुरन्त अपनी मां के पास यह जानने पहुंचा कि उसके पिता कौन हैं ? पाठक जान ही गए होंगे यही है नन्दा पुत्र अभय कुमार।

सदा प्रसन्नमुख रहने वाले अपने पुत्र को जब नन्दा ने उदास देखा तो तुरन्त पूछ उठी—क्या हुआ अभय आज इतना उदास क्यो है ? मां तुम मुझे तुरन्त बताओ मेरे पिताजी कहां हैं ? सुनते ही नन्दा का हृदय धक् से रह गया—बोली—'धनवाह सेठ ही तो तेरे पिता हैं।' 'नहीं मां आज मैं जान गया हूं, वह मेरे नहीं तुम्हारे पिताजी हैं।'

क्रमशः

संकलन

आंतरिक सौन्दर्य को निखारिए :

आज आवश्यकता है भीतर के सौन्दर्य को निखारने की, जरूरत है आत्म-गुणों के विकास की। इसके लिए व्यक्ति को ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप रत्नत्रयी की आराधना पर ध्यान देना चाहिए। उसे व्रतों और शाश्वत सुख देने वाले गुणों को ग्रहण करना चाहिए। एक बार कषाय की कालिमा को नष्ट कर दीजिए, फिर शाश्वत-सुख आपके पास होगा। वीतराग वाणी और संत समागम इसी उद्देश्य की प्राप्ति की ओर बढ़ने वाला कदम है। आप बाहर से रूपवान हैं, भीतर से भी रूपवान बनने का प्रयत्न करिए, अन्यथा यह रूप, यह शारीरिक सौन्दर्य आपको ले डूबेगा। तन का गौरापन या कृष्णवर्ण शरीर की सुन्दरता या कुरूपता आपके-हमारे हाथ की बात नहीं है, पर अन्तर का सौन्दर्य प्राप्त करना, आत्मा के उजलेपन को प्रकट करना आपके हमारे वश की ही बात है। आप चाहें तो आस्थावान् बन सकते हैं, व्रती बन सकते हैं, मन पर नियन्त्रण कर संयमी बन सकते हैं। इस तरह ज्ञान, दर्शन, चारित्र की सुरभि बढ़ाकर कषायों और पापों से हटेंगे तो सुख-शांति, आनन्द की प्राप्ति होगी।

—आचार्यवर श्री हीराचन्द्रजी म० सा०

साभार : जिनवाणी मार्च-१९९६

WB/NC-330
Vol. XX No. 3 **TITTHAYARA** **July 1996**
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

आ. श्री कैलाससागर सूरि ज्ञानमंदिर
श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा
गांधीनगर, पिन–382009